क्वारंटीन

राजिंदर सिंह बेदी

Source: https://www.rekhta.org/stories/quarantine-rajinder-singh-bedi-stories?lang=hi

प्लेग और क्वारंटीन!

हिमाला के पाँव में लेटे हुए मैदानों पर फैल कर हर एक चीज़ को धुंदला बना देने वाली कोहरे के मानिंद प्लेग के ख़ौफ़ ने चारों तरफ़ अपना तसल्लुत जमा लिया था। शहर का बच्चा बच्चा उसका नाम सुन कर काँप जाता था।

प्लेग तो ख़ौफ़नाक थी ही, मगर क्वारंटीन उससे भी ज़्यादा ख़ौफ़नाक थी। लोग प्लेग से इतने हरासाँ नहीं थे जितने क्वारंटीन से, और यही वजह थी कि मोहक्मा-ए-हिफ़्ज़ान-ए-सेहत ने शहरियों को चूहों से बचने की तलक़ीन करने के लिए जो क़द-ए-आदम इश्तिहार छपवाकर दरवाज़ों, गुज़रगाहों और शाहराहों पर लगाया था, उसपर “न चूहा न प्लेग” के उनवान में इज़ाफ़ा करते हुए “न चूहा न प्लेग, न क्वारंटीन” लिखा था।

क्वारंटीन के मुताल्लिक़ लोगों का ख़ौफ़ बजा था। बहैसियत एक डाक्टर के मेरी राय निहायत मुस्तनद है और मैं दावे से कहता हूँ कि जितनी अम्वात शहर में क्वारंटीन से हुईं, इतनी प्लेग से न हुईं, हालाँकि क्वारंटीन कोई बीमारी नहीं, बल्कि वह इस वसी रक़बे का नाम है जिसमें मुतअद्दी वबा के अय्याम में बीमार लोगों को तंदुरुस्त इन्सानों से अज़रू-ए-क़ानून अलाहिदा कर के ला डालते हैं ताकि बीमारी बढ़ने न पाए।

अगर्चे क्वारंटीन में डाक्टरों और नर्सों का काफ़ी इंतिज़ाम था, फिर भी मरीज़ों के कसरत से वहाँ आ-जाने पर उनकी तरफ़ फ़र्दन-फ़र्दन तवज्जो न दी जा सकती थी। ख़्वेश-ओ-अक़ारिब के क़रीब न होने से मैंने बहुत से मरीज़ों को बे-हौसला होते देखा। कई तो

अपने नवाह में लोगों को पै-दर-पै मरते देख कर मरने से पहले ही मर गये। बाज़-औक़ात तो ऐसा हुआ कि कोई मामूली तौर पर बीमार आदमी वहाँ की वबाई फ़िज़ा ही के जरासीम से हलाक हो गया और कस्रत-ए-अम्वात की वजह से आख़िरी रुसूम भी क़ारंटीन के मख़्सूस तरीक़ा पर अदा होतीं, यानी सैंकड़ों लाशों को मुर्दा कुत्तों की नाशों की तरह घसीट कर एक बड़े ढेर की सूरत में जमा किया जाता और बग़ैर किसी के मज़हबी रुसूम का एहतिराम किए, पेट्रोल डाल कर सबको नज़र-ए-आतिश कर दिया जाता और शाम के वक़्त जब डूबते हुए सूरज की आतिशीं शफ़क़ के साथ बड़े बड़े शोले यक-रंग-ओ-हम-आहंग होते तो दूसरे मरीज़ यही समझते कि तमाम दुनिया को आग लग रही है।

क़ारंटीन इसलिए भी ज़्यादा अम्वात का बाइस हुई कि बीमारी के आसार नुमूदार होते तो बीमार के मुतअल्लिक़ीन उसे छुपाने लगते, ताकि कहीं मरीज़ को जबरन क़ारंटीन में न ले जाएँ। चूँकि हर एक डाक्टर को तंबिह की गई थी कि मरीज़ की ख़बर पाते ही फ़ौरन मुत्तला करे, इसलिए लोग डाक्टरों से इलाज भी न कराते और किसी घर के वबाई होने का सिर्फ़ उसी वक़्त पता चलता, जब कि जिगर दोज़ आह-ओ-बुका के दर्मियान एक लाश उस घर से निकलती।

उन दिनों मैं क़ारंटीन में बतौर एक डाक्टर के काम कर रहा था। प्लेग का ख़ौफ़ मेरे दिल-ओ-दिमाग़ पर भी मुसल्लत था। शाम को घर आने पर में एक अर्से तक कारबोलिक साबुन से हाथ धोता रहता और जरासीम-कुश मुरक्कब से ग़रारे करता, या पेट को जला देने वाली गर्म काफ़ी या ब्रांडी पी लेता। अगर्चे उससे मुझे बे-ख़्वाबी और आँखों के चौंधेपन की शिकायत पैदा हो गई। कई दफ़ा बीमारी के ख़ौफ़ से मैंने क़य-आवर दवाएं खा कर अपनी तबीअत को साफ़ किया। जब निहायत गर्म काफ़ी या ब्रांडी पीने से पेट में तख़्मीर होती और बुख़ारात उठ उठ कर दिमाग़ को जाते, तो मैं अक्सर एक हवास-बाख़्ता शख़्स के मानिंद तरह तरह की क़यास-आराइयाँ करता। गले में ज़रा भी ख़राश महसूस होती तो मैं समझता कि प्लेग के निशानात नुमूदार होने वाले हैं... उफ़! मैं भी इस मूज़ी बीमारी का शिकार हो जाऊँगा... प्लेग! और फिर... क़ारंटीन!

उन्हीं दिनों में नौ ईसाई विलियम भागू ख़ाकरूब, जो मेरी गली में सफ़ाई किया करता था, मेरे पास आया और बोला, “बाबूजी... ग़ज़ब हो गया। आज अम्बोलेंस मोहल्ले के क़रीब से बीस और एक बीमार ले गई है।”

“इक्कीस? एम्बूलैंस में...?” मैं ने मुतअज्जिब होते हुए ये अलफ़ाज़ कहे।

“जी हाँ... पूरे बीस और एक... उन्हें भी क्विंटन (क़ारंटीन) ले जाएँगे... आह! वे बे-चारे कभी वापस न आएँगे?”

दरियाफ़्त करने पर मुझे इल्म हुआ कि भागू रात के तीन बजे उठता है। आध पाव शराब चढ़ा लेता है और फिर हस्ब-ए-हिदायत कमेटी की गलियों में और नालियों में चूना बिखेरना शुरू कर देता है, ताकि जरासीम फैलने न पाएँ। भागू ने मुझे मुत्तला किया कि उसके तीन बजे उठने का ये भी मतलब है कि बाज़ार में पड़ी हुई लाशों को इकट्ठा करे और उस मोहल्ले में जहाँ वह काम करता है, उन लोगों के छोटे मोटे काम काज करे जो बीमारी के ख़ौफ़ से बाहर नहीं निकलते। भागू तो बीमारी से ज़रा भी नहीं डरता था। उसका ख़याल था अगर मौत आई हो तो ख़्वाह वह कहीं भी चला जाए, बच नहीं सकता।

उन दिनों जब कोई किसी के पास नहीं फटकता था, भागू सर और मुँह पर मुंडासा बाँधे निहायत इन्हिमाक से बनी नौ इन्सान की ख़िदमत गुज़ारी कर रहा था। अगर्चे उसका इल्म निहायत महदूद था, ताहम अपने तजुर्बों की बिना पर वह एक मुक़र्रिर की तरह लोगों को बीमारी से बचने की तराकीब बताता। आम सफ़ाई, चूना बिखेरने और घर से बाहर न निकलने की तलक़ीन करता। एक दिन मैंने उसे लोगों को शराब कसरत से पीने की तलक़ीन करते हुई भी देखा। उस दिन जब वह मेरे पास आया तो मैं ने पूछा, “भागू तुम्हें प्लेग से डर भी नहीं लगता?”

“नहीं बाबूजी... बिन आई बाल भी बीका नहीं होगा। आप इत्ते बड़े हकीम ठहरे, हज़ारों ने आप के हाथ से शिफ़ा पाई। मगर जब मेरी आई होगी तो आपका दारू दर्मन भी कुछ असर न करेगा... हाँ बाबूजी... आप बुरा न मानें। मैं ठीक और साफ़ साफ़ कह रहा हूँ।”

और फिर गुफ़्तगु का रुख बदलते हुए बोला, “कुछ कोन्टीन की कहिए बाबूजी... कोन्टीन की।”

“वहाँ क्वारंटीन में हज़ारों मरीज़ आ गए हैं। हम हत्त-अल-वुसा उनका इलाज करते हैं। मगर कहाँ तक, नीज़ मेरे साथ काम करने वाले ख़ुद भी ज़्यादा देर उनके दर्मियान रहने से घबराते हैं। ख़ौफ़ से उनके गले और लब सूखे रहते हैं। फिर तुम्हारी तरह कोई मरीज़ के मुँह के साथ मुंह नहीं जा लगाता। न कोई तुम्हारी तरह इतनी जान मारता है... भागू! ख़ुदा तुम्हारा भला करे। जो तुम बनी नौ इन्सान की इस क़दर ख़िदमत करते हो।”

भागू ने गर्दन झुका दी और मुंडासे के एक पल्लू को मुँह पर से हटा कर शराब के असर से सुर्ख़ चेहरे को दिखाते हुए बोला, “बाबूजी, मैं किस लायक़ हूँ। मुझसे किसी का भला हो जाए, मेरा ये निकम्मा तन किसी के काम आ जाए, इससे ज़्यादा ख़ुशक़िस्मती और क्या हो सकती है। बाबूजी बड़े पादरी लाबे (रेवरेंड मोनित लाम, आबे) जो हमारे मुहल्लों में अक्सर परचार के लिए आया करते हैं, कहते हैं, ख़ुदावंद-ए-यसू मसीह यही सिखाता है कि बीमार की मदद में अपनी जान तक लड़ा दो... मैं समझता हूँ...”

मैंने भागू की हिम्मत को सराहना चाहा, मगर कस्रत-ए-जज़्बात से मैं रुक गया। उसकी ख़ुश एतिक़ादी और अमली ज़िंदगी को देख कर मेरे दिल में एक जज़्बा-ए-रश्क पैदा हुआ। मैंने दिल में फ़ैसला किया कि आज क्वारंटीन में पूरी तनदही से काम कर के बहुत से मरीज़ों को बक़ैद-ए-हयात रखने की कोशिश करूँगा। उनको आराम पहुँचाने में अपनी जान तक लड़ा दूँगा। मगर कहने और करने में बहुत फ़र्क़ होता है। क्वारंटीन में पहुँच कर जब मैंने मरीज़ों की ख़ौफ़नाक हालत देखी और उनके मुँह से पैदा शूदा तअफ़्फ़ुन मेरे नथुनों में पहुँचा, तो मेरी रूह लरज़ गई और भागू की तक़्लीद करने की हिम्मत न पड़ी।

ताहम उस दिन भागू को साथ ले कर मैंने क्वारंटीन में बहुत काम किया। जो काम मरीज़ के ज़्यादा क़रीब रह कर हो सकता था, वह मैंने भागू से कराया और उस ने बिला

तअम्मुल किया... ख़ुद मैं मरीज़ों से दूर दूर ही रहता, इसलिए कि मैं मौत से बहुत ख़ाइफ़ था और इससे भी ज़्यादा क्वारंटीन से।

मगर क्या भागू मौत और क्वारंटीन, दोनों से बाला-तर था?

उस दिन क्वारंटीन में चार-सौ के क़रीब मरीज़ दाख़िल हुए और अढ़ाई सौ के लग भग लुक़्मा-ए-अजल हो गए!

ये भागू की जाँबाज़ी का सदक़ा ही था कि मैंने बहुत से मरीज़ों को शिफ़ायाब किया। वह नक़्शा जो मरीज़ों की रफ़्तार-ए-सेहत के मुतअल्लिक़ चीफ़ मेडिकल ऑफीसर के कमरे में आवेज़ाँ था, उसमें मेरे तहत में रखे हुए मरीज़ों की औसत सेहत की लकीर सबसे ऊँची चढ़ी हुई दिखाई देती थी। मैं हर-रोज़ किसी न किसी बहाने से उस कमरे में चला जाता और उस लकीर को सौ फ़ीसदी की तरफ़ ऊपर ही ऊपर बढ़ते देख कर दिल में बहुत ख़ुश होता।

एक दिन मैंने ब्रांडी ज़रूरत से ज़्यादा पी ली। मेरा दिल धक धक करने लगा। नब्ज़ घोड़े की तरह दौड़ने लगी और मैं एक जुनूनी की मानिंद इधर उधर भागने लगा। मुझे ख़ुद शक होने लगा कि प्लेग के जरासीम ने मुझ पर आख़िरकार अपना असर कर ही दिया है और अनक़रीब ही गिलटियाँ मेरे गले या रानों में नुमूदार होंगी। मैं बहुत सरासीमा हो गया। उस दिन मैंने क्वारंटीन से भाग जाना चाहा। जितना अर्सा भी मैं वहाँ ठहरा, ख़ौफ़ से काँपता रहा। उस दिन मुझे भागू को देखने का सिर्फ़ दो दफ़ा इत्तिफ़ाक़ हुआ।

दोपहर के क़रीब मैंने उसे एक मरीज़ से लिपटे हुए देखा। वह निहायत प्यार से उसके हाथों को थपक रहा था। मरीज़ में जितनी भी सकत थी उसे जमा करते हुए उसने कहा, “भई अल्लाह ही मालिक है। इस जगह तो ख़ुदा दुश्मन को भी न लाए। मेरी दो लड़कियाँ...”

भागू ने उसकी बात को काटते हुए कहा, “ख़ुदावंद-ए-यसू मसीह का शुक्र करो भाई... तुम तो अच्छे दिखाई देते हो।”

“हाँ भाई शुक्र है ख़ुदा का... पहले से कुछ अच्छा ही हूँ। अगर मैं क्वारंटीन...”

अभी ये अलफ़ाज़ उसके मुंह में ही थे कि उसकी नसें खिच गईं। उसके मुँह से कफ़ जारी हो गया। आँखें पथरा गईं। कई झटके आए और वह मरीज़, जो एक लम्हे पहले सबको और ख़ुसूसन अपने आपको अच्छा दिखाई दे रहा था, हमेशा के लिए ख़ामोश हो गया। भागू उसकी मौत पर दिखाई न देने वाले ख़ून के आँसू बहाने लगा और कौन उसकी मौत पर आँसू बहाता। कोई उसका वहाँ होता तो अपने जिगर दोज़ नालों से अर्ज़-ओ-समा को शिक़ कर देता। एक भागू ही था जो सबका रिश्तेदार था। सब के लिए उसके दिल में दर्द था। वह सबकी ख़ातिर रोता और कुढ़ता था... एक दिन उसने ख़ुदावंद-ए-यसू मसीह के हुज़ूर में निहायत इज्ज़-ओ-इन्किसार से अपने आप को बनी नौ इन्सान के गुनाह के कफ़्फ़ारा के तौर पर भी पेश किया।

उसी दिन शाम के क़रीब भागू मेरे पास दौड़ा दौड़ा आया। साँस फूली हुई थी और वह एक दर्दनाक आवाज़ से कराह रहा था। बोला, “बाबूजी... ये कोन्टीन तो दोज़ख़ है। दोज़ख़। पादरी लाबे इसी क़िस्म की दोज़ख़ का नक़्शा खींचा करता था...”

मैंने कहा, “हाँ भाई, ये दोज़ख़ से भी बढ़ कर है... मैं तो यहाँ से भाग निकलने की तर्कीब सोच रहा हूँ... मेरी तबीअत आज बहुत ख़राब है।”

“बाबूजी इससे ज़्यादा और क्या बात हो सकती है... आज एक मरीज़ जो बीमारी के ख़ौफ़ से बेहोश हो गया था, उसे मुर्दा समझ कर किसी ने लाशों के ढेरों में जा डाला। जब पेट्रोल छिड़का गया और आग ने सबको अपनी लपेट में ले लिया, तो मैंने उसे शोलों में हाथ पाँव मारते देखा। मैंने कूद कर उसे उठा लिया। बाबूजी! वह बहुत बुरी तरह झुलसा गया था... उसे बचाते हुए मेरा दायाँ बाज़ू बिल्कुल जल गया है।”

मैंने भागू का बाज़ू देखा। उस पर ज़र्द ज़र्द चर्बी नज़र आ रही थी। मैं उसे देखते हुए लरज़ उठा। मैं ने पूछा, “क्या वह आदमी बच गया है। फिर...?”

“बाबूजी... वह कोई बहुत शरीफ़ आदमी था। जिसकी नेकी और शरीफ़ी (शराफ़त) से दुनिया कोई फ़ायदा न उठा सकी, इतने दर्द-ओ-कर्ब की हालत में उसने अपना झुलसा हुआ चेहरा ऊपर उठाया और अपनी मरियल सी निगाह मेरी निगाह में डालते हुए उसने मेरा शुक्रिया अदा किया।”

“और बाबूजी...” भागू ने अपनी बात को जारी रखते हुए कहा, “उसके कुछ अर्से बाद वह इतना तड़पा, इतना तड़पा कि आज तक मैंने किसी मरीज़ को इस तरह जान तोड़ते नहीं देखा होगा... उसके बाद वह मर गया। कितना अच्छा होता जो मैं उसे उसी वक़्त जल जाने देता। उसे बचा कर मैंने उसे मज़ीद दुख सहने के लिए ज़िंदा रखा और फिर वह बचा भी नहीं। अब उन ही जले हुए बाज़ु वे ं से मैं फिर उसे उसी ढेर में फेंक आया हूँ...”

इसके बाद भागू कुछ बोल न सका। दर्द की टीसों के दर्मियान उसने रुकते रुकते कहा, “आप जानते हैं... वह किस बीमारी... से मरा? प्लेग से नहीं...। कोन्टीन से... कोन्टीन से!”

अगर्चे हमा याराँ दोज़ख़ का ख़याल उस ला-मुतनाही सिलसिला-ए-क़हर-ओ-ग़ज़ब में लोगों को किसी हद तक तसल्ली का सामान बहम पहुँचाता था, ताहम मक़हूर बनी-आदम की फ़लक शगाफ़ सदाएँ तमाम शब कानों में आती रहतीं। माओं की आह-ओ-बुका, बहनों के नाले, बीवियों के नौहे, बच्चों की चीख़-ओ-पुकार शहर की इस फ़िज़ा में, जिसमें कि निस्फ़ शब के क़रीब उल्लू भी बोलने से हिचकिचाते थे, एक निहायत अल्मनाक मंज़र पैदा करती थी। जब सही-ओ-सलामत लोगों के सीनों पर मनों बोझ रहता था, तो उन लोगों की हालत क्या होगी जो घरों में बीमार पड़े थे और जिन्हें किसी यर्क़ान-ज़दा के मानिंद दर-ओ-दीवार से मायूसी की ज़र्दी टपकती दिखाई देती थी और फिर क़ारंटीन के मरीज़, जिन्हें मायूसी की हद से गुज़र कर मल्क-उल-मौत मुजस्सम दिखाई दे रहा था, वे ज़िंदगी से यूँ चिमटे हुए थे, जैसे किसी तूफ़ान में कोई किसी दरख़्त की चोटी से चिमटा हुआ हो, और पानी की तेज़-ओ-तुंद लहरें हर लहज़ा बढ़ कर इस चोटी को भी डुबो देने की आर्ज़ूमंद हूँ।

मैं उस रोज़ तवह्हुम की वजह से क़ारंटीन भी न गया। किसी ज़रूरी काम का बहाना कर दिया। अगर्चे मुझे सख़्त ज़ेह्नी कोफ़्त होती रही... क्यूँकि ये बहुत मुम्किन था कि मेरी मदद से किसी मरीज़ को फ़ायदा पहुँच जाता। मगर इस ख़ौफ़ ने जो मेरे दिल-ओ-दिमाग़ पर मुसल्लत था, मुझे पा-ब-ज़ंजीर रखा। शाम को सोते वक़्त मुझे इत्तिला मिली कि आज शाम क़ारंटीन में पाँच सौ के क़रीब मज़ीद मरीज़ पहुँचे हैं।

मैं अभी अभी मेदे को जला देने वाली गर्म काफ़ी पी कर सोने ही वाला था कि दरवाज़े पर भागू की आवाज़ आई। नौकर ने दरवाज़ा खोला तो भागू हाँफ्ता हुआ अंदर आया। बोला, “बाबू जी... मेरी बीवी बीमार हो गई... उसके गले में गिलटियाँ निकल आई हैं... ख़ुदा के वास्ते उसे बचाओ... उस की छाती पर डेढ़ साला बच्चा दूध पीता है, वह भी हलाक हो जाएगा।”

बजाए गहरी हमदर्दी का इज़हार करने के, मैंने ख़ुशमगीं लहजे में कहा, “इससे पहले क्यूँ न आ सके... क्या बीमारी अभी अभी शुरू हुई है?”

“सुबह मामूली बुख़ार था... जब मैं कोन्टीन गया...”

“अच्छा... वह घर में बीमार थी। और फिर भी तुम क़ारंटीन गए?”

“जी बाबूजी... “भागू ने काँपते हुए कहा। “ वह बिल्कुल मामूली तौर पर बीमार थी। मैंने समझा कि शायद दूध चढ़ गया है... इस के सिवा और कोई तक्लीफ़ नहीं... और फिर मेरे दोनों भाई घर पर ही थे... और सैंकड़ों मरीज़ कोन्टीन में बेबस...”

“तो तुम अपनी हद से ज़्यादा मेहरबानी और क़ुर्बानी से जरासीम को घर ले ही आए न। मैं न तुमसे कहता था कि मरीज़ों के इतना क़रीब मत रहा करो... देखो मैं आज इसी वजह से वहाँ नहीं गया। इसमें सब तुम्हारा क़ुसूर है। अब मैं क्या कर सकता हूँ। तुमसे जाँबाज़ को अपनी जाँबाज़ी का मज़ा भुगतना ही चाहिए। जहाँ शहर में सैंकड़ों मरीज़ पड़े हैं...”

भागू ने मुलतजियाना अंदाज़ से कहा, “मगर ख़ुदावंद-ए-यसू-मसीह...”

“चलो हटो... बड़े आए कहीं के... तुमने जान-बूझ कर आग में हाथ डाला। अब उसकी सज़ा मैं भुगतूँ? क़ुर्बानी ऐसे थोड़े ही होती है। मैं इतनी रात गए तुम्हारी कुछ मदद नहीं कर सकता...”

“मगर पादरी लाबे...”

“चलो... जाओ... पादरी लाम, आबे के कुछ होते...”

भागू सर झुकाए वहाँ से चला गया। उसके आध घंटे बाद जब मेरा ग़ुस्सा फ़रो हुआ तो मैं अपनी हरकत पर नादिम होने लगा। मैं आक़िल कहाँ का था जो बाद में पशेमान हो रहा था। मेरे लिए यही यक़ीनन सबसे बड़ी सज़ा थी कि अपनी तमाम ख़ुद्दारी को पामाल करते हुए भागू के सामने गुज़िश्ता रवैय्ये पर इज़हार-ए-मआज़रत करते हुए उसकी बीवी का पूरी जाँफ़िशानी से इलाज करूँ। मैंने जल्दी जल्दी कपड़े पहने और दौड़ा दौड़ा भागू के घर पहुँचा... वहाँ पहुँचने पर मैंने देखा कि भागू के दोनों छोटे भाई अपनी भावज को चारपाई पर लिटाए हुए बाहर निकाल रहे थे... मैंने भागू को मुख़ातिब करते हुए पूछा, “इसे कहाँ ले जा रहे हो?” भागू ने आहिस्ता से जवाब दिया, “कोन्टीन में...”

“तो क्या अब तुम्हारी दानिस्त में क्वारंटीन दोज़ख़ नहीं... भागू?”

“आपने जो आने से इन्कार कर दिया, बाबू जी... और चारा ही क्या था। मेरा ख़याल था, वहाँ हकीम की मदद मिल जाएगी और दूसरे मरीज़ों के साथ उसका भी ख़याल रखूँगा।”

“यहाँ रख दो चारपाई... अभी तक तुम्हारे दिमाग़ से दूसरे मरीज़ों का ख़याल नहीं गया...? अहमक़...”

चारपाई अन्दर रख दी गई और मेरे पास जो तीर ब-हदफ़ दवा थी, मैं ने भागू की बीवी को पिलाई और फिर अपने ग़ैर मरई हरीफ़ का मुक़ाबला करने लगा। भागू की बीवी ने आँखें खोल दीं।

भागू ने एक लरज़ती हुई आवाज़ में कहा, “आपका एहसान सारी उम्र न भूलूँगा, बाबूजी।”

मैंने कहा, “मुझे अपने गुज़िश्ता रवय्ये पर सख़्त अफ़सोस है भागू... ईश्वर तुम्हें तुम्हारी ख़िदमात का सिला तुम्हारी बीवी की शिफ़ा की सूरत में दे।”

उसी वक़्त मैंने अपने ग़ैर मरई हरीफ़ को अपना आख़िरी हर्बा इस्तेमाल करते देखा। भागू की बीवी के लब फड़कने लगे। नब्ज़ जो कि मेरे हाथ में थी, मद्धम हो कर शाने की तरफ़ सरकने लगी। मेरे ग़ैर मरई हरीफ़ ने जिसकी उमूमन फ़तह होती थी, हस्ब-ए-मामूल फिर मुझे चारों शाने चित्त गिराया। मैंने नदामत से सर झुकाते हुए कहा, “भागू! बदनसीब भागू! तुम्हें अपनी क़ुर्बानी का ये अजीब सिला मिला है... आह!”

भागू फूट फूट कर रोने लगा।

वह नज़ारा कितना दिल-दोज़ था, जब कि भागू ने अपने बिलबिलाते हुए बच्चे को उसकी माँ से हमेशा के लिए अलाहिदा कर दिया और मुझे निहायत आजिज़ी और इन्किसारी के साथ लौटा दिया।

मेरा ख़याल था कि अब भागू अपनी दुनिया को तारीक पा कर किसी का ख़याल न करेगा... मगर उससे अगले रोज़ मैंने उसे बेश-अज़-पेश मरीज़ों की इमदाद करते देखा। उसने सैंकड़ों घरों को बेचराग़ होने से बचा लिया... और अपनी ज़िंदगी को हेच समझा। मैंने भी भागू की तक़्लीद में निहायत मुस्तइदी से काम किया। क़ारंटीन और हस्पतालों से फ़ारिग़ हो कर अपने फ़ालतू वक़्त मैंने शहर के ग़रीब तब्क़े के लोगों के घर, जो कि बदरुओं के किनारे पर वाक़े होने की वजह से, या ग़लाज़त के सबब बीमारी के मस्कन थे, रुजू किया।

अब फ़िज़ा बीमारी के जरासीम से बिल्कुल पाक हो चुकी थी। शहर को बिल्कुल धो डाला गया था। चूहों का कहीं नाम-ओ-निशान दिखाई न देता था। सारे शहर में सिर्फ़ एक-आध केस होता जिसकी तरफ़ फ़ौरी तवज्जो दिए जाने पर बीमारी के बढ़ने का एहतिमाल बाक़ी न रहा।

शहर में कारोबार ने अपनी तिब्बी हालत इख़्तियार कर ली, स्कूल, कॉलेज और दफ़ातिर खुलने लगे।

एक बात जो मैं ने शिद्दत से महसूस की, वह ये थी कि बाज़ार में गुज़रते वक़्त चारों तरफ़ से उंगलियाँ मुझी पर उठतीं। लोग एहसान मंदाना निगाहों से मेरी तरफ़ देखते। अख़्बारों में तारीफ़ी कलिमात के साथ मेरी तसावीर छपीं। उस चारों तरफ़ से तहसीन-ओ-आफ़रीन की बौछार ने मेरे दिल में कुछ ग़ुरूर सा पैदा कर दिया।

आख़िर एक बड़ा अज़ीमुश्शान जलसा हुआ जिसमें शहर के बड़े बड़े रईस और डाक्टर मदऊ किए गए। वज़ीर-ए-बलदियात ने उस जलसे की सदारत की। मैं साहिब-ए-सदर के पहलू में बिठाया गया, क्यूँकि वह दावत दर-अस्ल मेरे ही एज़ाज़ में दी गई थी। हारों के बोझ से मेरी गर्दन झुकी जाती थी और मेरी शख़्सिय्यत बहुत नुमायाँ मालूम होती थी। पर ग़ुरूर निगाह से मैं कभी उधर देखता कभी इधर... बनी-आदम की इंतिहाई ख़िदमत-गुज़ारी के सिले में कमेटी, शुक्र-गुज़ारी के जज़्बे से मामूर एक हज़ार एक रुपये की थैली बतौर एक हक़ीर रक़म मेरी नज़र कर रही थी।"

जितने भी लोग मौजूद थे, सब ने मेरे रुफ़क़ा-ए-कार की उमूमन और मेरी ख़ुसूसन तारीफ़ की और कहा कि गुज़िश्ता आफ़त में जितनी जानें मेरी जाँ-फ़िशानी और तनदही से बची हैं, उनका शुमार नहीं। मैंने न दिन को दिन देखा , न रात को रात, अपनी हयात को हयात-ए-क़ौम और अपने सरमाये को सरमाय-ए-मिल्लत समझा और बीमारी के मुस्कनों में पहुँच कर मरते हुए मरीज़ों को जाम-ए-शिफ़ा पिलाया!

वज़ीर-ए-बलदियात ने मेज़ के बाएँ पहलू में खड़े हो कर एक पतली सी छड़ी हाथ में ली और हाज़िरीन को मुख़ातिब करते हुए उनकी तवज्जो उस सियाह लकीर की तरफ़ दिलाई

जो दीवार पर आवेज़ाँ नक़्शे में बीमारी के दिनों में सेहत के दर्जे की तरफ़ हर लहज़ा उफ़्ताँ ओ ख़िज़ाँ बढ़ी जा रही थी। आख़िर में उन्होंने नक़्शे में वह दिन भी दिखाया जब मेरे ज़ेर-ए-निगरानी चौव्वन (54) मरीज़ रखे गए और वे तमाम सेहतयाब हो गए। यानी नतीजा सौ फ़ीसदी कामयाबी रहा और वह सियाह लकीर अपनी मेराज को पहुँच गई।

इसके बाद वज़ीर-ए-बलदियात ने अपनी तक़रीर में मेरी हिम्मत को बहुत कुछ सराहा और कहा कि लोग ये जान कर बहुत ख़ुश होंगे कि बख़्शी जी अपनी ख़िदमात के सिले में लैफ़्टीनैंट कर्नल बनाए जा रहे हैं।

हाल तहसीन-ओ-आफ़रीन की आवाज़ों और पुरशोर तालियों से गूँज उठा।

उन ही तालियों के शोर के दर्मियान मैंने अपनी पुरग़रूर गर्दन उठाई। साहब-ए-सद्र और मुअज़्ज़ज़ हाज़िरीन का शुक्रिया अदा करते हुए एक लंबी चौड़ी तक़रीर की, जिसमें अलावा और बातों के मैंने बताया कि डाक्टरों की तवज्जो के क़ाबिल हस्पताल और क्वारंटीन ही नहीं थे, बल्कि उनकी तवज्जो के क़बिल ग़रीब तब्क़े के लोगों के घर थे। वे लोग अपनी मदद के बिल्कुल नाक़ाबिल थे और वही ज़्यादा-तर इस मूज़ी बीमारी का शिकार हुए। मैं और मेरे रुफ़क़ा ने बीमारी के सही मक़ाम को तलाश किया और अपनी तवज्जो बीमारी को जड़ से उखाड़ फेंकने में सर्फ़ कर दी। क्वारंटीन और हस्पताल से फ़ारिग़ हो कर हमने रातें उन ही ख़ौफ़नाक मुस्कनों में गुज़ारीं।

उसी दिन जलसे के बाद जब मैं बतौर एक लैफ़्टीनैंट कर्नल के अपनी पुरग़ुरूर गर्दन को उठाए हुए, हारों से लदा फंदा, लोगों का नाचीज़ हदिया, एक हज़ार एक रुपये की सूरत में जेब में डाले हुए घर पहुँचा, तो मुझे एक तरफ़ से आहिस्ता सी आवाज़ सुनाई दी, “बाबू जी... बहुत बहुत मुबारक हो।”

और भागू ने मुबारकबाद देते वक़्त वही पुराना झाड़ू क़रीब ही के गंदे हौज़ के एक ढकने पर रख दिया और दोनों हाथों से मुँडासा खोल दिया। मैं भौंचक्का सा खड़ा रह गया।

“तुम हो...? भागू भाई!” मैंने ब-मुश्किल तमाम कहा... “दुनिया तुम्हें नहीं जानती भागू, तो न जाने... मैं तो जानता हूँ। तुम्हारा यसू तो जानता है... पादरी लाम, आबे के बेमिसाल चेले... तुझ पर ख़ुदा की रहमत हो...!”

उस वक़्त मेरा गला सूख गया। भागू की मरती हुई बीवी और बच्चे की तस्वीर मेरी आँखों में खिच गई। हारों के बार-ए-गिराँ से मुझे अपनी गर्दन टूटती हुई मालूम हुई और बटोई के बोझ से मेरी जेब फटने लगी। और... इतने एज़ाज़ हासिल करने के बावजूद मैं बे-तौक़ीर हो कर इस क़द्र-शनास दुनिया का मातम करने लगा!